प्रस्तावना

प्रस्तावना

ऐसा कहा जाता है कि मानव जाति के एक विशाल समुदाय का जितना दमन अस्पृश्यता ने किया है उतना शायद ही किसी अन्य ने किया हो। ऐसी धारणा यदि पूर्णतया सत्य न हो तब भी हिन्दू समाज और धर्म को इसने अवश्य ही दीर्घांश में प्रभावित किया है, बल्कि कलंकित किया है। इस अस्पृश्यता के कारण ही भारत मे वर्ण व्यवस्था कुव्यवस्था बन गई और आज तक कटघरे में खड़ी रहने के लिये अभिशप्त है बल्कि कहना होगा कि वर्ण व्यवस्था विनाश भारत का अधुनातन समाज सुधार आन्दोलन बन गया है। वर्ण -विभाजन मूलत: श्रम-विभाजन के सिद्वान्त पर आधारित थी जिसका असंदिग्ध आशय था कि यह कर्म केन्द्रित थी न कि जन्म आधारित। कुछ यूरोपीय विद्धान हिन्दुस्तान को तभी तक हिन्दुस्तान बना रहना मानते है जब तक कि वह अपनी वर्ण-व्यवस्था को कायम रखता है, नही तो उनके अभिमत में यह एक शानदार 'एग्लोशेक्सन साम्राज्य' का प्रायद्वीप की हालत पर पहुँच जायेगा। इसका तात्पर्य है कि यह हिन्दुस्तान की अपनी एक पहचान है।

कर्म के आधार पर स्थापित वर्ण-व्यवस्था कालान्तर में जब जन्म का आधार-आकार लेता गया तो यह हिन्दू समाज में कोढ़ के रूप में फैलने लगा और उसमें अस्पृश्यता का समावेश खाज की तरह हो गया। जिन शूद्रों को हिन्दू समाज का पैर माना जाता था उनके अस्तित्व को समाप्त करने के लिये समाज में तरह-तरह के प्रतिबन्ध लगाये जाने लगे। बात यहां तक पहुँच गई कि मार्गो में अपनी पहचान बताने के लियें उन्हें वाद्ययंत्रों का सहारा लेना पड़ा। उनको पीने के पानी के लिये दर-दर भटकना पड़ा। उनके मंदिर--प्रवेश पर इस प्रकार प्रतिबन्ध लगाये गयें जैसे वे ईश्वर की सन्तान ही न हों। हिन्दू समाज ने शूद्रों को पूर्णत: ब्राहमण, क्षत्रिय और वैश्य की मर्जी का मोहताज बना दिया। जिस वेद को भगवान माना जाता है और मानव संस्कृति और ज्ञान के विकास की पहली किरण माना जाता है, उसे ही शूद्रों को पढने से रोक दिया गया।

ये बाते थी जो किसी भी विवेकशील व्यक्ति को झकझोर सकती थी और ऐसा हुआ भी। प्राचीन काल से ही बहुत से समाज सुधारको ने इसके विरूद्ध आवाज उठायी। जैन और बौद्ध धर्म का उदय ही इस आशय की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ था। मध्यकाल में कबीर, रैदास, नानक, चोखामल,धन्ना, चैतन्य, रामकृष्ण परमहंस आदि ने इस कुप्रथा का खण्डन किया। आधुनिक काल में राजा राममोहन राय ने 'ब्रहम समाज' और दयानंद सरस्वती ने 'आर्य समाज' के माध्यम से इसकी खिलाफत की। इसके अतिरिक्त स्वामी विवेकानंद, ज्योति राव फूले आदि बहुत से समाज सुधारकों न इन अस्पृश्य कहे जाने वाले शूद्रों की दशा सुधारनें के लिये सामाजिक लड़ाई छेड़ी लेकिन वे वांच्छित सफलता हासिल नही कर सके। महापुरूषों की इस श्रेणी में महात्मा गांधी भी है जिन्होंने शूद्रों की दशा को बहुत निकट से देखा और भारत के स्वातंत्र्य आंदोलन में शूद्रों की समस्या को भी समाहित कर लिया। इसके लिये उन्होंने एक नया शब्द 'हरिजन' इस्तेमाल करना प्रारम्भ किया। हरिजन अर्थात ईश्वर के जन। गांधी जी के स्वातंत्र्य आन्दोलन में हरिजन-उद्धार इस आशय से शामिल हो गया कि ईश्वर ब्राहमण , भंगी, पण्डित सबमें विद्यमान है न कोई ऊँच है न कोई नीच। सभी समान है क्योंकि एक ही सृष्टा के सभी संतान हैं।

गांधी जी एक पूर्ण वैष्णव थे। उनसे किसी की पीड़ा देखी नहीं जाती थी और वे पीड़ित व्यक्ति के कष्ट को दूर करने के लिये प्रयास भी करते थे। यहां तो एक बहुत बड़ा समुदाय ही उत्पीड़ित चला आ रहा था। उनकें इसी भावना के कारण अस्पृश्यों की हीन दशा ने गांधी जी को इतना मर्माहत किया कि उन्होंने भारतीय समाज को सच्चें अर्थो में स्वतंत्र बनाने का मूलमंत्र ही 'अस्पृश्यता-निवारण' और 'साम्प्रदायिक एकता' को मान लिया। अस्पृश्यता-निवारण का अर्थ सारे संसार के लिये प्रेम, सेवा का सन्देश और मानव मानव के बीच की खाई को पाटना है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में गांधी जी द्वारा चलाये गये हरिजन-उद्धार आन्दोलन का ऐतिहासिक विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। ऐतितहासिक दृष्टि से देखा जाय तो भारत की जो भी वर्तमान समस्यायें है उसके बारे में जो बाते अतीत में कही गयी

है वही आज भी कही जा रही है, भलें ही उनमें काफी सुधार हुआ हो। गांधी जी का 'हरिजन-उद्धार आन्दोलन' जब शूरू हुआ तब भी आजकल जैसी ही समस्याओं से देश घिरा था। आजादी के पच्चास वर्षो बाद भी हरिजनों के प्रति उत्पीड़न की वही फसल देखने सुनने को मिलती है। फर्क केवल इतना ही है कि पहले उत्पीड़न लाठी डण्डो से होता था अब उसका स्थान आग्नेयास्त्रों ने लिया है। हत्यारी और बलात्कारी उत्पीड़न में सामूहिकता का प्रवेश बढ़ता जा रहा है और सबसे त्रासद विडम्बना यह है कि स्वतंत्र भारत की दलित्थान के लिये प्रतिबद्ध कटिबद्ध तथा 'मण्डल आरक्षण' से लैश शासन में यह हो रहा है। हरिजन की सामाजिक, राजनैतिक , आर्थिक और धार्मिक आदि दशायें सुधारनें के अनगिनत सरकारी और गैर सरकारी प्रयास किये गये किन्तु समस्या ज्यों की त्यों बनी हुई है। सर्वत्र इस समस्या पर सरकारी उपेक्षा को ही दोषी माना जाता है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध 'हरिजन उद्धार आन्दोलन और महात्मा गांधी' में यह दर्शाने का प्रयास किया गया है :

१. यह कि अपने पूर्व तक के समाज के शुभ चिन्तकों, सुधारको हरिजनोद्धार (शूद्रो) संबंधी संकल्पना का अधिक से अधिक उनके सुधारात्मक-आन्दोलन को क्रिया के ठोस धरातल पर लाने का कार्य गांधी जी ने किया।

२. यह कि साामाजिक ही नहीं, भारत के त्रिमुखी - सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक क्रांति के लिये हरिजनोद्धार से आगे हरिजनोत्थान एक अपरिहार्य, एक अति 'अवश्य' है।

३. हरिजन को उसकी समस्याओं से मुक्ति दिलाने में गांधी मार्ग आज और आगे भी प्रासंगिक रहेगा।

इस प्रकार भारतीय समाज से उद्भूत 'हरिजन समस्या' पर आधुनिक परिप्रेक्ष्य में यह शोध-प्रबन्ध एक सर्च लाईट साबित होगा, यह शोधकर्ता का विश्वास है।